कुछ ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय-

नाट्य शास्त्र-२३०, संगीत पारिजात-२३२, संगीत रत्नाकर-२३३, गीत गोविन्द, रागतत्वविबोध-२३४, चतुर्दन्डिप्रकाशिका और संगीत मकरंद-२३६,

संगीत पारिजात

यह ग्रंथ पंडित अहोबल द्वारा सन् १६५० में लिखा गया है। इसे अपने काल का प्रतिनिधि ग्रंथ माना जाता है क्योंकि यह कई दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इनके बाद के ग्रंथकारों में पं० अहोबल की छाया दिखती है। अहोबल ही प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने संगीत पारिजात में वीणा पर स्वरों का स्थान निश्चित करने के लिये एक नवीन पद्धति अपनाई। इस पद्धति के द्वारा साधारण व्यक्ति भी स्वर की स्थापना सही ढंग से कर सकता है।

यह ग्रंथ मंगलाचरण से प्रारम्भ होता है। इसके बाद स्वर, ग्राम, मूर्छना, स्वर-विस्तार, वर्ण, जाति, समय और राग प्रकरण (अध्याय) में संगीत के पारिभाषिक शब्दों और अन्य बातों पर विचार किया गया है।

स्वर प्रकरण के अंतर्गत अहोबल ने बताया कि हृदय स्थित अनाहत चक्र में वायु और अग्नि के संयोग से आहत नाद की उत्पत्ति होती है। आगे उन्होंने बताया कि नाद के दो प्रकार होते हैंयआहत नाद और अनाहत नाद। स्वर और श्रुति में सर्प और उसकी कुण्डली सा भेद है। परम्परा का पालन करते हुये श्रुति की संख्या और उनके नाम बताया। उसने बाइसों श्रुतियों को पांच भेदों में बांटा-दीप्ता, आयता, करुणा, मृदु और मध्या। सा-म को ब्राह्मण, रे-ध को क्षत्रिय और ग-नि को वैश्य कहा। आगे उसने स्वरों की जन्म-भूमि, उनके रंग और रस बताया। ग्राम प्रकरण के अन्तर्गत उसने षडज, मध्यम और गंधार इन तीनों ग्रामों के स्वरूप का वर्णन किया है।

मूर्छना प्रकरण के अंतर्गत मूर्छना की परिभाषा देते हुये उसने केवल षडज ग्राम की मूर्छनाओं का वर्णन किया है। मध्यम और गंधार ग्राम की मूर्छनाओं को बिल्कुल छोड़ दिया है। शुद्ध स्वरों से सात मूर्छनायें बन सकती हैं, किन्तु उसने विकृत स्वरों से भी सम्पूर्ण जाति की मूर्छनाओं की रचना की है। इसके बाद उसने षडज ग्राम की शुद्ध और विकृत स्वरों की मूर्छनाओं की रचना की है। इन सब को मिला देने से उसने बताया कि केवल षडज ग्राम से ४ लाख २० हजार, १ सौ २० मूर्छनाओं की रचना हो सकती है।

स्वर-प्रस्तार प्रकरण के अन्तर्गत उसने सातों स्वरों के संयोग से ४ हजार २ सौ २० स्वर-समूहों की रचना बताया है। वर्णलक्षणम् अध्याय के अन्तर्गत वर्ण की परिभाषा बताते हुये वर्ण के ४ प्रकार बताये हैं, स्थाई, आरोही, अवरोही और संचारी। अलंकार की परिभाषा इस प्रकार दी है, 'क्रमेण स्वरसंदर्भमलकारं प्रचक्षते।' अलंकार के कई प्रकार बताये हैं जैसे–मृदु, नन्द, विस्तीर्ण, जित, सोम, बिन्दु, ग्रीव, भाल, वेणि, प्रकाशक आदि। स्थाई वर्ण के ७, आरोही वर्ण के १२, अवरोही वर्ण के भी १२ और संचारी वर्ण के २५ कुल मिलाकर ५६ अलंकार बताये हैं। इनके अतिरिक्त पं० अहोबल ने ५ अलंकार और बताये हैं। इन सभी अलंकारों के नाम, लक्षण और उदाहरण संगीत पारिजात में दिये गये हैं। मन्द्र सप्तक के लिये ऊपर बिंदु और तार सप्तक के लिये ऊपर खड़ी रेखा अंकित किया है।

गमक प्रकरण में ७ शुद्ध जातियांयषडजा, आर्षभी, गांधारी, मध्यमा, पंचमी, धैवती और नैषादी का संक्षिप्त परिचय दिया गया है और कंपित, प्रत्याहत, स्फुरित, घर्षण, हुम्फित आदि गमकों को समझाया गया है।

समय-प्रकरण के अन्तर्गत वीणा पर स्वरों की स्थापना बताई गई है। ५ प्रकार की गीतियाँ मानी हैं और उनके लक्षण दिये गये हैं। आगे १ सौ २५ रागों का परिचय और गायन-समय बताया गया है। अहोबल ने आगे स्पष्ट रूप से लिखा है कि राग तो बहुत से माने गये हैं, किन्तु १२५ उपयोगी रागों का ही वर्णन किया है। संगीत पारिजात में कुल ५०० श्लोक हैं।

संगीत रत्नाकर

यह ग्रन्थ १३वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पं० शारङ्गदेव द्वारा लिखा गया। वह देवगिरि (दौलताबाद) राज्य का दरबारी संगीतज्ञ था। यह ग्रंथ उत्तरी और दक्षिणी दोनों संगीत-पद्धतियों में आधार ग्रंथ माना जाता है। संगीत रत्नाकर सात अध्यायों में विभाजित है जिनमें गायन, वादन और नृत्य तीनों से संबंधित पारिभाषिक शब्दों तथा अन्य बातों पर प्रकाश डाला गया है। यद्यपि उसने भरत का अनुसरण किया है फिर भी उसकी मौलिकता और प्रतिभा सारणा चतुष्टई, मूर्छना, मध्यम ग्राम का लोप, अनेक विकृत स्वरों की प्राप्ति में झलकता है।

संगीत रत्नाकर के प्रथम अध्याय– स्वराध्याय में नाद की परिभाषा, नाद की उत्पत्ति और उसके भेद (आहत और अनाहत), सारणा चतुष्टई, ग्राम, मूर्छना, वर्ण, अलंकार और जाति का विस्तृत वर्णन मिलता है। सारणा चतुष्टई प्रयोग के अंतर्गत भरत ने स्वर वीणा और शारङ्गदेव ने श्रुति वीणा पर प्रयोग किया है। इसलिये भरत ने सात तार और पंडित शारङ्गदेव ने २१ तार बांधे थे। मूर्छना के अन्तर्गत उसने सभी मूर्छनाओं को षडज ग्राम में खिसका दिया और प्रत्येक मूर्छना को षडज ग्राम से प्रारम्भ किया जिससे उसे विकृत स्वरों की परख हुई। उसके समय तक केवल दो ही विकृत स्वर माने जाते थे। उसके

स्वरों की विशेषता यह थी कि कोई भी स्वर अपने स्थान से हट जाने पर विकृत तो होता ही था, अपने स्थान पर रहते हुये भी पिछले स्वर से अन्तराल (श्रुत्यांतर) बदल जाने पर भी विकृत हो जाता था।

संगीत रत्नाकर का दूसरा अध्याय 'राग विवेकाध्याय' है। इसके अंतर्गत उसने २६४ रागों का वर्णन किया है। उसने सभी रागों को १० भागों में बांटा है। उनके नाम हैं-(१) ग्राम राग जिनकी संख्या ३० मानी है, (२) राग की २० (३) उपराग की ८, (४) रागांग की भी ८, (५) भाषांग की २१, (६) क्रियांग की १२, (७) उपांग की ३, (८) भाषा की ९६ (९) विभाषा की २० और (१०) अंतर्भाषा रागों की संख्या ४ मानी है। इस वर्गीकरण का आधार अस्पष्ट होने के कारण इनके अर्थ के विषय में कई मतमतांतर हैं। फिर भी इस वर्गीकरण से यह स्पष्ट है कि उस समय भरत की जातियां अप्रचलित हो गई थीं।

तीसरा अध्याय प्रकीर्णकाध्याय है, जिसमें उसने वाग्गेयकार के २८ गुणों का विवेचन किया है। इसके अतिरिक्त उसमें गायक के गुण-दोष तथा अच्छाई-बुराई बताई है।

चौथा अध्याय, प्रबन्धाध्याय है जिसमें पं० शारङ्गदेव ने प्रबंध विषय पर विचार किया है। देशी संगीत, मार्गी संगीत, निबद्धगान, अनिबद्धगान, रागालाप, रूपकालाप, आलप्तिगान, स्वस्थान नियम का आलाप, अल्पत्व-बहुत्व आदि पर इस अध्याय में प्रकाश डाला है।

पंचम अध्याय तालाध्याय है जिसमें उसने उस समय के प्रचलित तालों पर विचार किया है। छठा अध्याय, वाद्याध्याय है जिसमें उसने समस्त वाद्यों को ४ भागों में बांटा है-तत्, सुषिर, अवनद्ध और घन। संगीत रत्नाकर का अन्तिम अध्याय नर्तनाध्याय है जिसमें उसने नृत्य, नाट्य और नृत्य सम्बन्धी विषयों पर प्रकाश डाला है।

गीतगोविन्द

संस्कृत के महान पंडित एवम् संगीतज्ञ पं० जयदेव ने इस अमर कृति की रचना १२वीं शताब्दी में की। उनका जन्म बंगाल के केंडला नामक स्थान में हुआ था। उनकी पत्नी का नाम पद्मावती था जो पुरी, उड़ीसा की रहने वाली थीं। गीतगोविंद में राधाकृष्ण से सम्बन्धित प्रबन्ध गीत हैं जो विभिन्न रागों में गाये जाते थे। उनके पद भाव, रस और लालित्य में उच्चकोटि के हैं। उनके गीतों में मथुरा-वृन्दावन की झांकी और राधाकृष्ण की प्रेम-लीला का विशद वर्णन मिलता है। जब श्रीकृष्ण गोकुल से मथुरा चले जाते हैं तो गोप-गोपियाँ और राधा उनकी विरह से परेशान हो जाती हैं। उनके गीत राधा को कृष्ण की और कृष्ण को राधा की मनः स्थिति का ज्ञान कराती हैं। जयदेव का सम्पूर्ण जीवन कृष्णमय था।

विद्यापति और चन्डीदास ऐसे कवि जयदेव के गीतों से बड़े प्रभावित थे। राजाशिव सिंह ने विद्यापति को 'अभिनव जयदेव' की उपाधि से विभूषित किया था। कुछ विदेशी विद्वान् भी इनके पदों से बहुत प्रभावित हुये। सर एडविन अर्नल्डि ने इसकी अंग्रेजी अनुवाद किया और उसका नाम (The Indian Song of Songs) अर्थात् भारतीय गीतों का गीत रक्खा। अंग्रेजी के अतिरिक्त इसका अनुवाद लैटिन और फ्रेंच भाषा में भी हो चुका है।

रागतत्वविबोध

यह ग्रंथ श्रीनिवास द्वारा १८वीं शताब्दी में लिखा गया है। यद्यपि यह छोटा सा ग्रन्थ है, किन्तु कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। श्रीनिवास ने अधिकांश स्थलों पर अहोबल को ही अनुसरण किया है, किन्तु कहीं उससे आगे भी बढ़ गये हैं। अहोबल के ढंग पर उसने वीणा के तार पर बारहों स्वरों की स्थापना की और स्पष्ट शब्दों में इस क्रिया को समझाया। श्रीनिवास ने अन्य प्राचीन ग्रंथकारों के समान सभी स्वरों को उनकी अन्तिम श्रुति पर रक्खा और अपना शुद्ध थाट आधुनिक काफी थाट के समान माना।

श्रीनिवास ने १२ श्रुतियों के प्रयोग की आज्ञा दी है जिन पर १२ स्वर स्थित हैं। मेलों के वर्णन में उसने इतनी ही श्रुतियों अर्थात् स्वरों को प्रयोग किया है। उसने एक मेल से स्वरों की संख्या के आधार ४८४ रागों की रचना की है। उसकी बताई हुई विधि की आज भी मान्यता है।

श्रीनिवास ने मेल, ओडव, षाडव, सम्पूर्ण, थाट-रचना-विधि आदि पर विस्तृत प्रकाश डाला है, किन्तु ग्राम, मूर्छना आदि प्राचीन विषयों पर बहुत कम लिखा है। इन तथ्यों से यह स्पष्ट है कि उसे आधुनिक संगीत का जन्मदाता कहा जा सकता है। रागाध्याय में उसने अहोबल का ही अनुसरण किया है।

चतुर्दन्डिप्रकाशिका

सन् १६६० में दक्षिण भारत के पंडित व्येङ्कटमखी द्वारा यह ग्रंथ लिखा गया। यह दक्षिणी संगीत का ग्रन्थ है और शारङ्गदेव कृत संगीत रत्नाकर पर बहुत कुछ आधारित है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि सर्वप्रथम इसी ग्रन्थ में यह सिद्ध किया गया है कि गणित के द्वारा एक सप्तक से अधिक से अधिक ७२ थाटों की रचना हो सकती है, किंतु उन्होंने व्यवहार के लिये उन्नीस थाटों को ही मान्यता दी है। उनके नाम हैं–मुखारी, सामवराली, भूपाली, हजुज्री, बसंत भैरवी, गौल, भैरवी, अहीरी, श्री, काँबोजी, शङ्कराभरण, सामन्त, हेशाशी, नाट्ट, शुद्धवराली, पंतुवराली, शुद्धरामक्री, सिंहराव और कल्याणी। व्येङ्कटमखी ने ७ शुद्ध और ५ विकृत स्वर माने हैं। विकृत स्वरों के नाम हैं–साधारण गधार, अंतर गंधार, वराड़ी मध्यम, कैशिक निषाद और काकली निषाद।

'राग-तरंगिणी'

१४ वीं शताब्दी में हमें संगीत की प्रसिद्ध पुस्तक लोचन द्वारा लिखित 'राग तरंगिणी' प्राप्त होती है।

लोचन मिथला ज़िले में किसी स्थान पर रहते थे। अभी तक इनका काल संदिग्ध है। किन्तु इस ग्रन्थ में 'ईमन' तथा 'फ़रोदस्त' रागों का वर्णन यह स्पष्ट करता है कि इसका संपादन १४ वीं शताब्दी के आस-पास हो गया था। लोचन ग्राम, मूर्च्छना और जाति-गायन के स्थान पर 'जन्य-जनक' अथवा 'ठाठ-पद्धति का वर्णन करते हैं। आपने 'निबद्ध' और 'अनिबद्ध' प्रकारों का वर्णन करने के उपरान्त तुरन्त श्रुतियों के प्रश्न को ले लिया है। उन्होंने अपने जन्यरागों का वर्गीकरण बारह ठाठों में किया है। इन बारह ठाठों से ७५ जन्यराग बनाए हैं। बारह ठाठों के स्वर बताकर रागों का गायन-समय भी दिया है। लोचन ने मिश्रित रागों पर भी एक अध्याय लिखा है।

इस ग्रन्थ में ७५ जन्यरागों की सूची देखने से विदित होता है कि इसमें आए हुए लगभग सभी राग आज के हिन्दुस्तानी संगीत में प्रचलित हैं। इसीलिए यह ग्रन्थ ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्त्व का है। परन्तु साथ में यह भी जानना बड़ा रोचक है कि इन जन्यरागों में से अनेक स्वर यवन काल में परिवर्तित कर दिए गए हैं। परन्तु कुछ के रूप आज भी ज्यों-के-त्यों पाये जाते हैं।